International Journal of Education and Science Research Review
Volume-1, Issue-5
www.ijesrr.org
E-ISSN 2348-6457
October-2014
Email- editor@ijesrr.org

डा0 इलाचन्द्र जोशी तथा अन्य हिन्दी साहित्यकारों के शोध साहित्यालोचना में प्रगतिशील मूल्यों के महत्व का संक्षिप्त अध्ययन

Preeti Agnihotri
Research Scholar
Sunrise University
Alwar, Rajasthan

Dr. Anand Swaroop Shukla
Supervisor
Sunrise University
Alwar, Rajasthan

सार

जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय ने चरित्रप्रधान मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। मार्मिक दृश्यों का चयन, एक ही दृश्य या घटना के सहारे कथानक का निर्माण करके देशकाल के संकलन का निर्वाह, असाधारण परिस्थितियों में पड़े मानवों का सूक्ष्म मनोविश्लेषण, विचारात्मकता और यत्र–तत्र वक्र–अस्पष्ट भाषा जैनेन्द्र की कहानीकला की विशेषताएं हैं। इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मनोवैज्ञानिक सत्यों का मार्मिक उद्घाटन है। साधारण–असाधारण दोनों प्रकार के पात्रों का चित्रण उन्होंने किया। जोशी जी का कहना है कि मनोविश्लेषण करते हुए व्यक्ति के अहं पर प्रहार करना ही मेरा लक्ष्य है। अज्ञेयने मनोवैज्ञानिक तथा सामयिक सत्य की व्यंजना करने वाली कहानियों के साथ समाज के मध्यम–वर्ग के दैनिक जीवन की विशेषताओं और उनकी साधारण तथा कारुणिक स्थितियों के खण्डचित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ भी लिखी हैं और राजनीतिक विद्रोह से सम्बन्धित कहानियाँ भी। इनकी कई कहानियाँ पात्रों के पिछले जीवन की अस्फुट चित्र/कल्पनाओं के रूप में हैं। कुछ अधूरापन–सा होने पर भी अज्ञेय की कहानियाँ प्रभावपूर्ण होती हैं।

जीवन परिचय

मनोविज्ञान को अपनी कला तथा साधना का मूल आधार बनाकर मध्यवर्ग विशेषकर निम्न मध्यवर्ग के मनोविकारग्रस्त व्यक्तियों की जीवनगत अनुभूतियों एवं कल्पनाओं का विश्लेषण करने वाले साहित्यकार डा. इलाचन्द्र जोशी का जन्म 13 दिसंबर 1902 को अल्मोड़ा के मल्ला दनिया में एक मध्मवर्गीय परिवार में हुआ था। इलाचन्द्र जोशी के पिता पंडित चन्द्र बल्लभ जोशी संगीत के विद्वान थे। वह वन विभाग में चीफ कंजरर्वेटर के सचिव भी थे। शैशवकाल से ही उन्होंने लेखन कार्य आरम्भ कर दिया था। सातवींकक्षा में पढ़ते समय अल्मोड़ा में सुधाकर नाम से एक हस्तलिखित साहित्यिक मासिक पत्रिका निकाली थी। जिसमें कविवर सुमित्रानंदन पंत और सुप्रसिद्ध नाटककार गोविंद बल्लभ पंत की भी रचनाएं प्रकाशित होती रही। 1914 में बारह वर्ष की आयु में सर्वप्रथम कहानी सजनवा शीर्षक से जयशंकर प्रसाद की हिन्दी गल्पमाला में प्रकाशित हुई। उन्होंने एक दर्जन उपन्यासों व 50 से अधिक कहानियां लिखी। लज्जा, घृणामयी, सन्यासी, जहांज का पंछी व मणिमाला उपन्यास काफी चर्चित रहे। संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं के आधिकारिक रूप से जानकार जोशी छोटी अवस्था में ही भागकर कलकत्ता पहुंचे। वहां उनकी मुलाकात 1923 में बंगला के श्रेष्ठ उपन्यासकार शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय से हुई। परिचय कालांतर में घनिष्ठ आत्मीयता में परिणत हो गई। शरत बाबू ने युवा जोशी में दबे कलाकार को उभारा। कलकत्ता में शरद के साथ रहते हुए तथा फक्कड़ों सा जीवन व्यतीत करते हुए उन्हें यथार्थ जीवन के अनेक कटु अनुभव प्राप्त हुए। 14 दिसंबर 1982 को उनका इलाहाबाद में देहवसान हो गया। दुर्भाग्य से स्व. जोशी के साहित्य पर वाछंनीय कार्य साहित्य जगत ने नहीं किया।

प्रगतिशील साहित्य का महत्व

प्रगतिशील साहित्य का लक्ष्य समाज को बेहतर बनाना होता है। सम्प्रेषण इसकी पहली शर्त है। जहाँ संप्रेषणीयता नहीं है वहाँ प्रगतिशीलता नहीं होती, क्योंकि प्रगतिशीलता गति में होती है, ऐसी गति जो समाज को आगे की तरफ ले जाए। प्रगतिशील मूल्य में जीवन को गुणवत्ता प्रदान करने की शक्ति होती है। मूल्यों की सत्ता विषयी

की दृष्टि द्वारा निर्धारित होती है। साहित्य के बहुत से प्रगतिशील मूल्य स्थायी है और मनुष्य ने अपने सुदीर्घ विकासक्रम और जीवन संघर्ष के बीच ही उन्हें पाया है। मूल्यों की प्रतिष्ठा से ही हर काल में बुराई के विरुद्ध लड़ने की क्षमता लेकर नए–नए लेखक पैदा होते हैं। मानवीय संवेदना से सम्पन्न हर रचना में प्रगतिशील मूल्य होते हैं। हिन्दी साहित्य प्रारंभ से ही जन–कल्याण की भावना को समेटे हुए है। मूल्यों को किसी वाद की कारा में बन्दी नहीं बनाया जा सकता। यह युग की प्रबुद्ध जन–चेतना के रूप में मानवता के विकास और प्रगति के किसी न किसी रूप में प्रत्येक युग और चरण में प्रवाहमान रहा है इसलिए इनकी आवश्यकता हर समय बनी रहती है और इसीलिए इनका महत्व भी अक्षुण्ण है।

साहित्यालोचना के मूल्य जीवन–मूल्यों से ही निर्धारित होते हैं। साहित्यकार केवल उन्हें नयी भाव–मूर्तता करके ग्राह्य और संवेदनीय बनाता है। इससे उसकी कृति मनुष्य की चेतना को और उसके आचरण को नियंत्रित करने वाली सहज प्रवृत्तियों को अधिक संस्कृत और अपने सामाजिक परिवेश के प्रति अधिक जागरुक बनाती है। प्रगतिशील मूल्य आलोचना की सत्ता, पाठक की ग्रहणशीलता और आलोचक के दिशा बोध के लिए आवश्यक सिद्ध होते हैं। साहित्य के स्वस्थ और विकासशील मूल्यों का निर्धारण हो जाने पर व्यावहारिक स्तर की आलोचना को भी नयी दृष्टि मिलती है और वह अपने पूर्वग्रहों तथा अन्य संकीर्णताओं से अपना पीछा छुपाने की कोशिश करता है। युग और परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य के प्रगतिशील मूल्यों में भी परिवर्तन होते हैं। आज के युग की नैतिकता को पिछले युग के मूल्यों से मूल्यांकित नहीं किया जा सकता। एक ओर समाज स्थायी मूल्यों द्वारा स्थायित्व ग्रहण करता है वहीं दूसरी ओर हासोन्मुख मूल्यों को त्यागता चलता है। मूल्य शाश्वत भले ही नहीं होते स्थायी होते हैं जिनका महत्व आचार्यों के लिए ही नहीं वरन् प्रत्येक अध्येयता के लिए महत्वपूर्ण है।

प्रगतिशील मूल्य से सम्पृक्त आलोचना ने साहित्य के मौलिक प्रश्नों के संबंध में नवीन जिज्ञासा को जन्म दिया और वस्तुवादी दृष्टिकोण से सामाजिक यथार्थ को सामने रख कर जो समाधान प्रस्तुत किए उनके द्वारा सामान्य विचार स्तर उन्नत एवं समृद्ध हुआ। शुक्लोत्तर आलोचना में शुक्ल जी के लोकमंगल की धारणा को केन्द्र में रखकर आदर्श को भिन्न दृष्टि से स्थापित किया गया जिसकी भावना एक निश्चित वैज्ञानिक अर्थ की द्योतक है और जिसमें आध्यात्मिक और आनन्दवाद का कोई स्थान नहीं है। प्रगतिशील दृष्टि वह दृष्टि है जो किसी भी युग में चलने वाले प्रतिगामी एवं पुरोगामी शक्तियों के संघर्ष को सजीव रूप में चित्रित करते हुए, उभरते हुए प्रगतिशील मूल्यों के समर्थन के आधार पर साहित्य के माध्यम से एक नई सृष्टि करती है, इसलिए यह महत्वपूर्ण है। इन्द्रनाथ मदान के शब्दो में–''मूल्यों के संदर्भ में यदि हम साहित्य को नहीं समझते तो अक्सर ऐसी झूठी प्रतिमान योजना को प्रश्रय देने लगते हैं कि समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओं में मुड़ जाता है। चाहें परंपरा का मूल्यांकन कर रहे हों, चाहें सामाजिक उपादेयता की माप, यदि हम उसके मानवीय आधार से स्खलित होते हैं तो हम साहित्य के मर्म को नहीं पा सकते।' मूल्यों को सभी रचनाकारों ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। मुक्तिबोध कहते हैं कि –'कहना न होगा कि साहित्य के आकर्षण का आधार उसकी श्रेष्ठता नहीं, वे जीवन मूल्य तथा उनकी अत्यन्त कलात्मक अभिव्यक्ति है जो मनुष्य की स्वतन्त्रता तथा उच्चतरमानव विकास अथवा जीवन मूल्य के विश्लेषण में सक्रिय रहती है'

प्रगतिशील तत्वों का आधार हर युग में युग की मांग रहती है। युग की यह मांग है कि दृष्टिकोण को समन्वय वादी बनाया जाए तथा सभी समीक्षा पद्धतियों के तत्वों को प्रगतिशील मूल्यों से सम्पृक्त किया जाए। प्रगतिशील मूल्य के कारण ही साहित्य में लोकमंगल को प्रोत्साहन मिला तथा साहित्येतिहास के प्रति नवीन दृष्टिकोण की प्रवृत्ति व्यापकता के साथ हिन्दी साहित्य में आई है। प्रगति समय के काल क्रम में बाद का आना ही नहीं है। हम समय के परिवर्तन के साथ प्रगति को एक ही मानदंड से जाँच सकते हैं कि व्यक्ति की उसमें स्थिति क्या है। अपनी क्षमताओं को विकसित करने के कितने अवसर उपलब्ध हैं जिसमें कि पहले से अच्छे, अधिक विकसित और अधिक अच्छे मानव प्राणी बन सकें और स्वतन्त्रता की आकांक्षा और सत्य की खोज की दिशा में उन्होंने कितनी प्रगति की है। इस मानदंड से ही हम यह जान सकते हैं कि हमने भूतकाल से आगे कितनी प्रगति की है और भविश्य, जो अन्धकारमय और निराशा जनक लगता है उसमें मानव प्रगति के नष्ट होने का क्या खतरा है। प्रगति विकास में मिलती है। विकास का अर्थ स्पष्ट ही मनुष्य का कल्याण है, कोई भी सिद्धान्त इसका विरोध नहीं कर सकता। सारे दर्शन और जीवन के विचार इसी आधार पर टिके हुए हैं। मूल्यों से पूरी मानवता का

कल्याण होता है। 'प्रगति वास्तव में वही है जो व्यक्ति की भी स्वतन्त्रता को मानती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता भी समाज की स्वतन्त्रता की ही भाँति उसके विकास में निरन्तर बढ़ती है। अगर इनमें से एक भी दबता है, तो वहाँ कुछ गड़बड़ जरूर है और वह गड़बड़ ही समाज और व्यक्ति के सामंजस्य में बाधा उपस्थित करती है और वही प्रगति को रोकने वाली वस्तु है।'

आधुनिक चिंतन में मनुष्य सारे मूल्यों का स्रोत और उपादान और स्वयं विघटन का कारण भी है। निर्मित और विकसित प्रगतिशील मूल्य विघटित होते जा रहे हैं जो वर्तमान सभ्यता की चिंता का मूल है। मूल्यहीनता की स्थिति हर युग में होती है। साथ ही आवश्यकतानुसार संशोधन और सुधार भी होते रहे हैं। 'औद्योगिक क्रांति के माध्यम से समूची मानव जाति को एक अनोखी आपाधापी में डाल दिया है, वे ही लोग अब इस बात के लिए चिंतित हैं कि मनुष्य को कुछ समय अपने लिए इधर–उधर निहारने को होना चाहिए।' औद्योगिक विकास से हमें सूचनाएँ तो तत्काल मिल जाती हैं परंतु अनुभूति का क्षय होता है। विकास के परिणाम से गति तो बढ़ी है साथ ही संसार की सीमाएँ संकुचित हुई हैं, मनुष्य एक दूसरे के अधिकाधिक संपर्क में आया है जिससे मूल्यहीनता की स्थिति पैदा हुई है। मानवीय सौहार्द में उत्तरोत्तर कमी तथा एक तरह की कठोरता का विकास हुआ है, जिसका साक्ष्य हमारा समकालीन जीवन और साहित्य दोनों प्रस्तुत करते हैं। साहित्य की सबसे बड़ी चुनौती अर्थहीन और संवेदनहीन लगने वाले मानव जीवन में नए प्रगतिशील मूल्यों का संचार करना है। संवेदनात्मक अर्थ का सृजन और संचरण मानवीय जीवन की विशिष्टता, चरम मूल्य और दायित्व है। साहित्य इस सार्थकता की खोज का प्रमुख माध्यम रहा है। जीवन में सार्थकता की अनुभूति का संचार करने का दायित्व छोडकर साहित्य, साहित्य नहीं रह जाएगा। प्रगतिशील और विकसित मूल्य व्यापक, समृद्ध और सुखद सामाजिक स्व के निर्माता होते हैं। इससे मानसिक–संवेगात्मक–बौद्धिक अंतर्जगत भी बदल जाता है। साथ ही रुचियों, मानसिक और नैतिक स्थितियों, उपलब्धियों तथा संभावनाओं में भी परिवर्तन होता है। 'जब हम मूल्यों का सृजन और आशंसा, सृजन और विलयन, समन्वय और विघटन, दोनों ही करते हैं तो निश्चित ही हमारे मूल्य (कलाकार और निरीक्षक दोनों के पक्ष में) हमारी शक्ति और दुर्बलता, सौंदर्य–कुरुपता, मांग–तुष्टि, हर्ष–शोक, रुचि–अरुचि के प्रतिबिंब होंगे।' साहित्यालोचना में जितना अधिक मूल्यों का उपयोग होगा वह उतना ही अधिक उच्च कोटि का सिद्ध होगा।

साहित्यकार का सत् उद्देश्य, सर्व कल्याण भावना, विश्व–व्यापक करुणानुभूति, राष्ट्र प्रेम, शोषितों के प्रति सहानुभूति आदि ऐसे सूक्ष्म अन्तर्तत्व हैं जो साहित्य को सर्म्पूण युग निर्माण का उपयोगी घटक बना सकते हैं। मानवता की रक्षा करने की शक्ति एकमात्र साहित्य में है। पतनोन्मुखी युग चेतना के पुनरुत्थान के लिए जीवन के प्रशस्त कर्म–क्षेत्र में अनुभूत तथ्यों के आधारभूत मूल्यों का निर्धारण करना होगा जिससे कि स्थितियाँ संभल जाए। साहित्यकार की सामाजिक भूमिका उसे संघर्ष के प्रति सजग बनाती है। साहित्यकार की प्रति बद्धता केवल मात्र श्रेष्ठ साहित्य के प्रति होनी चाहिए जिसके माध्यम से वह प्रगतिशील जीवन–मूल्यों को स्थापित करता है और सर्व कल्याण की व्यापक भावना को व्यक्ति–अस्तित्व का अनिवार्य अंग बनाता है। आज एक तरफ आलोचना यदि पांडित्य के बोझ से दबी है तो दूसरी तरफ गैर जिम्मेदार ढंग की पत्रकारिता और सस्ती लोकप्रियता के प्रलोभन से ग्रस्त है। काव्य कृति की आलोचना कृति के मूल्यों से ही होनी चाहिए। नैतिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, तथा साहित्येतर मूल्यों का हस्तक्षेप साहित्य में इसलिए होता है कि वे जीवन के दूसरे संदर्भों से जुड़े हुए हैं, जिनसे मिलकर ही जीवन की तस्वीर बनती है। साहित्य हालांकि यथावत जीवन नहीं है बल्कि उससे विशिष्ट और विलक्षण है। निर्मला जैन के शब्दों में 'सत्य, शिव और सुन्दर के त्रिक में प्रायरू सुन्दर को कला का निजी मूल्य माना गया है। अतरू सत्य और शिव की अपेक्षा सुन्दर साहित्य का अधिक अपना मूल्य है।' साहित्यिक समस्याएँ सुलझाने में साहित्यिक मूल्यों के साथ ही साहित्येतर मूल्यों की भी आवश्यकता पड़ जाती है।

साहित्यालोचना में प्रगतिशील मूल्यों की उपस्थिति से आनन्द का संचार, सभ्यता और कला आदि का विकास, रागात्मक संबंधों का विकास संभव है। प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना के लिए आवश्यक है, युग के सामाजिक समस्याओं का अंकन किया जाए जिससे साहित्य में शक्ति का संचार होता है। इलाचन्द्र जोशी कहते हैं–'युग की समस्याओं को लेकर भी श्रेष्ठतम साहित्यक कलाकृतियों की रचना हो सकती है। केवल कायर कलाकार युग के कठोर यथार्थ जीवन के प्रश्नों से कतराते हैं। उन्नीसवीं शती में पाश्चात्य कलाकारों ने, विशेषकर रुस और फ्रांस

के श्रेष्ठ उपन्यासकारों ने, युग की समस्याओं को खुले तौर पर अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। इससे न उनकी कला में कोई त्रुटि आई और न आपेक्षिक स्थायित्व में। हमारे यहाँ रवीन्द्रनाथ ने अपने उपन्यासों में युग–समस्याओं को उठाया था।' नारी उत्थान, मानवतावाद, लोकमंगल, जन–जीवन और साहित्य का विकास, देश भक्ति वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आर्थिक शोषण का विरोध आदि साहित्यलोचन में प्रगतिशील मूल्यों के प्रयोग से पुष्ट होते हैं। मूल्यों का महत्व इसमें है कि इसके कारण जीवन से गहरा लगाव हो जाता है। निराशावाद और व्यक्तिवाद की जडें कमजोर होने लगती है। साहित्य की पतनशीलता रुकने लगती है। विश्व का मानव समाजवाद की ओर बढ़ने लगता है जहाँ किसी प्रकार का भेद–भाव नहीं होता। लेखक जनसाधारण के जीवन की ओर ध्यान देने लगता है। प्रगतिशीलता मूल्यों के प्रति सचेतनता के कारण ही प्रगतिशील परंपरा के लेखकों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को लोकप्रिय बनाया, साम्प्रदायिकता और रुढ़िवाद का विरोध किया, हिन्दू–मुस्लिम दंगों के दिनों में, बंगाल के आकाल के दिनों में अपनी सामाजिक जागरुकता का विशेष परिचय दिया।

सामाजिक परिस्थितियों के बदल जाने पर भी उस युग में रचा हुआ साहित्य अच्चा लगता है। क्योंकि उनमें जो विकसित मूल्य होते हैं वे हर युग के लिए उपयोगी होते हैं। मूल्यों की आवश्यकता को समझकर ही साहित्यकार साहित्य में मानव मूल्यों की रक्षा करता है ताकि वे आगे चलकर और समृद्ध हो सकें और आने वाले समय में संचरित और विकसित हो सके। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में 'आज भी भारत की जातियों में परस्पर द्वेष दूर करके उन्हें सामनता और भाईचारे के आधार पर एकता के सूत्र में बाँधनें की आवश्यकता बनी है।' और यह तभी पूरी होगी जब मूल्यों की स्थिति भी बनी रहेगी। यह सत्य है कि संसार को समय–समय पर आलोचना की जरुरत हुआ करती है। यहाँ तक कि कठोर आलोचना की भी, पर वह केवल अल्पकाल के लिए ही होती है। हमेशा के लिए तो उन्नतिकारी और मूल्यवान कार्य ही वांछित होते हैं। प्रगतिशील मूल्यों की आवश्यकता साहित्यालोचना में हमेशा रही है और निरूसंदेह बनी ही रहेगी इसे नकारा नहीं जा सकता।

संदर्भ–सूची

1. मदान इन्दनाथ, हिन्दी आलोचना की पहचान, लिपि प्रकाशन, संस्करण–1974, पृष्ठ–111
2. मुक्तिबोध, नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1993, पृष्ठ–132
3. राघव रांगेय, समीक्षा और आदर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण–1955, पृष्ठ–144
4. चतुर्वेदी रामस्वरुप, प्रसाद–निराला–अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहवाद, संस्करण––2009, पृष्ठ–86
5. जोशी इलाचन्द्र, साहित्य सर्जना, छात्रहितकारी पुस्तकालय, प्रयाग, संस्करण–1949, पृष्ठ–116
6. शर्मा डॉ. रामविलास, माकर्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2008, पृष्ठ–244
7. रचना शुक्ला (पाण्डेय) हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील मूल्य का महत्व, 2012, पृष्ठ–215
8. मेघ रमेश कुंतल, सौंदर्य मूल्य और मूल्यांकन, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, प्रथम संस्करण–2008, पृष्ठ–88
9. जैन निर्मला, आधुनिक साहित्य मूल्य और मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1980, पृष्ठ–14